

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म और माया का स्वरूप

वीना रानी, सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा

सारांश (Abstract)

भारतीय दर्शन-परंपरा में वेदान्त दर्शन का स्थान सर्वोच्च माना जाता है, क्योंकि यह उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता— इस प्रस्थानत्रयी—पर आधारित एक सुव्यवस्थित तात्त्विक चिंतन-पद्धति है। वेदान्त दर्शन के केंद्र में दो मूलभूत अवधारणाएँ स्थित हैं—ब्रह्म तथा माया। ब्रह्म को सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप, निर्गुण, निराकार तथा सर्वव्यापी परम तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि माया उस अनिर्वचनीय शक्ति का नाम है, जो ब्रह्म के एकत्व को नाना रूपों में प्रतीत कराती है और जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय का कारण बनती है। यह शोध-पत्र आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त, रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत वेदान्त तथा मध्वाचार्य के द्वैत वेदान्त—इन तीन प्रमुख वेदान्त-सम्प्रदायों में ब्रह्म तथा माया की अवधारणाओं का तुलनात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा शंकराचार्य के भाष्यों के मूल संस्कृत उद्धरणों के आधार पर यह अध्ययन दर्शाता है कि माया न तो पूर्णतः सत् है और न ही पूर्णतः असत्, अपितु वह अनिर्वचनीय (सदसद्विलक्षण) है, जो ब्रह्म के आश्रय में रहकर जीव को अज्ञानवश जगत् में बाँधे रखती है। यह पत्र यह भी प्रतिपादित करता है कि माया का यथार्थ ज्ञान ही मोक्ष का द्वार है, और वेदान्त का समस्त प्रयोजन जीव को अपने ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार कराना है। अंततः यह अध्ययन ब्रह्म-माया विमर्श की आधुनिक वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक चिंतन में प्रासंगिकता को भी रेखांकित करता है।

कुंजी शब्द (Keywords): वेदान्त, ब्रह्म, माया, अद्वैत, शंकराचार्य, अविद्या, सत्-चित्-आनन्द, अध्यास, विवर्तवाद, मोक्ष

1. भूमिका (Introduction)

भारतीय दार्शनिक परंपरा में षड्दर्शनों में वेदान्त दर्शन को सर्वाधिक गहन तथा सूक्ष्म तात्त्विक चिंतन के रूप में स्वीकार किया जाता है। "वेदान्त" शब्द का शाब्दिक अर्थ है—वेद का अंत, अर्थात् वेद के उस अंतिम भाग का ज्ञान, जो उपनिषदों में समाहित है। उपनिषद वेद के ज्ञानकाण्ड का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिनमें कर्मकाण्ड की अपेक्षा तत्त्व-ज्ञान, आत्म-साक्षात्कार तथा ब्रह्म-विद्या पर बल दिया गया है। वेदान्त दर्शन का मूल आधार प्रस्थानत्रयी—उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता—है, जिस पर विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने भाष्य लिखकर वेदान्त की विविध शाखाओं को जन्म दिया।

वेदान्त दर्शन के केंद्रीय विषय दो हैं—ब्रह्म और माया। ब्रह्म वह परम सत्ता है, जो समस्त सृष्टि का मूल कारण, आधार तथा अंतिम लक्ष्य है। छान्दोग्य उपनिषद में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

"सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।" (छान्दोग्य उपनिषद्, 6.2.1)

अर्थात् हे सौम्य! सृष्टि से पूर्व यह जगत् केवल सत् (ब्रह्म) रूप में ही विद्यमान था, जो एक और अद्वितीय था। यह श्लोक वेदान्त के अद्वैत-सिद्धांत का मूल आधार बनता है।

किंतु यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि यदि ब्रह्म एक और अद्वितीय है, तो यह विविधतापूर्ण, नाना नाम-रूपों से युक्त प्रत्यक्ष जगत् कहाँ से आया? इसी प्रश्न के उत्तर में वेदान्त दर्शन "माया" की अवधारणा प्रस्तुत करता है। माया वह अनिर्वचनीय शक्ति है, जिसके प्रभाव से एक अद्वितीय ब्रह्म नाना रूपों में प्रतीत होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम अथवा सीप में चाँदी का भ्रम होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में इसका संकेत मिलता है, जहाँ कहा गया है कि इन्द्र ने अपनी मायाशक्ति से नाना रूप धारण किए—

"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते।" (बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.5.19 के संदर्भानुसार, ऋग्वेद 6.47.18 से गृहीत)

यह शोध-पत्र वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म तथा माया की अवधारणाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, तथा यह दर्शाने का प्रयास करता है कि किस प्रकार आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा मध्वाचार्य—इन तीन प्रमुख आचार्यों ने इन अवधारणाओं की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हुए भी अंततः जीव को ब्रह्म-साक्षात्कार तथा मोक्ष की ओर उन्मुख किया।

2. शोध उद्देश्य, महत्त्व एवं पद्धति (Objectives, Significance and Methodology)

2.1 शोध के उद्देश्य

1. वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म तत्त्व के स्वरूप, लक्षण तथा गुणों का विश्लेषण करना।
2. माया की अवधारणा, उसके स्वरूप-निर्धारण तथा उसकी अनिर्वचनीयता का अध्ययन करना।
3. अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैत वेदान्त में ब्रह्म-माया संबंध की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना।
4. उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता तथा शांकरभाष्य के मूल संस्कृत उद्धरणों के आधार पर एक प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत करना।
5. ब्रह्म-माया विमर्श की मोक्ष-साधना तथा समकालीन जीवन-दर्शन में प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।

2.2 शोध का महत्त्व

वर्तमान युग में, जब मनुष्य भौतिकवादी जीवन-शैली के कारण आंतरिक अशांति तथा अस्तित्वगत संकट (existential crisis) से जूझ रहा है, वेदान्त दर्शन का ब्रह्म-माया विमर्श विशेष महत्त्व रखता है। यह दर्शन मनुष्य को यह बोध कराता है कि प्रत्यक्ष जगत् की नश्वरता तथा परिवर्तनशीलता के मूल में एक अपरिवर्तनशील, नित्य सत्ता विद्यमान है, जिसका साक्षात्कार ही जीवन का परम लक्ष्य है। यह शोध-पत्र इस प्राचीन ज्ञान-परंपरा को व्यवस्थित तथा विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है, जिससे यह अध्ययन शोधार्थियों, दर्शन के विद्यार्थियों तथा जिज्ञासु पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

2.3 शोध पद्धति

इस शोध-पत्र में विश्लेषणात्मक-वर्णनात्मक (analytical-descriptive) तथा तुलनात्मक (comparative) पद्धति का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, भगवद्गीता, आदि शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्रभाष्य,

विवेकचूडामणि तथा अन्य वेदान्त-ग्रंथों के मूल संस्कृत श्लोकों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों के रूप में आधुनिक विद्वानों की व्याख्याओं तथा समीक्षात्मक ग्रंथों का सहारा लिया गया है। उद्धरण-शैली के रूप में APA पद्धति का पालन करते हुए हिंदी तथा संस्कृत स्रोतों का उल्लेख किया गया है।

3. वेदान्त दर्शन: स्वरूप, उद्भव एवं प्रस्थानत्रयी (Vedanta Philosophy: Nature, Origin and the Prasthanatrayi)

3.1 वेदान्त शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

"वेदान्त" शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—"वेद" तथा "अन्त"। इसका एक अर्थ है वेद का अंतिम भाग, अर्थात् उपनिषद्, तथा दूसरा अर्थ है वेद का सार अथवा चरम प्रयोजन। वेदान्त दर्शन को "उत्तरमीमांसा" भी कहा जाता है, क्योंकि यह जैमिनि के "पूर्वमीमांसा" (जो कर्मकाण्ड पर केंद्रित है) के पश्चात् ज्ञानकाण्ड पर केंद्रित दर्शन है (राधाकृष्णन्, 1948)।

3.2 प्रस्थानत्रयी

वेदान्त दर्शन का सैद्धांतिक आधार तीन ग्रंथों पर टिका है, जिन्हें सम्मिलित रूप से "प्रस्थानत्रयी" कहा जाता है—

1. **उपनिषद् (श्रुति-प्रस्थान):** प्रमुख उपनिषदों में ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक—ये दश उपनिषद् मुख्य माने जाते हैं। इनमें ब्रह्म-विद्या का प्रत्यक्ष तथा गूढ़ प्रतिपादन मिलता है।
2. **ब्रह्मसूत्र (न्याय-प्रस्थान):** महर्षि बादरायण (वेदव्यास) द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र, जिसे "वेदान्तसूत्र" अथवा "शारीरिकसूत्र" भी कहा जाता है, उपनिषदों के प्रतीत होने वाले विरोधाभासी कथनों का तर्कसंगत समन्वय प्रस्तुत करता है। इसका प्रथम सूत्र है—

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" (ब्रह्मसूत्र, 1.1.1)

अर्थात् अब इसके पश्चात् (कर्मकाण्ड के अनन्तर) ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करनी चाहिए। द्वितीय सूत्र में ब्रह्म का लक्षण दिया गया है—

"जन्माद्यस्य यतः।" (ब्रह्मसूत्र, 1.1.2)

अर्थात् जिससे इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होता है, वही ब्रह्म है।

3. **भगवद्गीता (स्मृति-प्रस्थान):** महाभारत के भीष्मपर्व में निहित भगवद्गीता उपनिषदों के दार्शनिक सिद्धांतों को व्यावहारिक जीवन-दर्शन के रूप में प्रस्तुत करती है। गीता को स्वयं "उपनिषदों का सार" कहा गया है (व्यास, रचनाकाल अज्ञात)।

3.3 वेदान्त के प्रमुख सम्प्रदाय

प्रस्थानत्रयी पर विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने भाष्य लिखे, जिनके आधार पर वेदान्त दर्शन की तीन प्रमुख शाखाएँ विकसित हुई—

(क) अद्वैत वेदान्त (आदि शंकराचार्य, 8वीं शताब्दी): इस सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है, जगत् मिथ्या (व्यावहारिक सत्ता) है, तथा जीव और ब्रह्म में कोई वास्तविक भेद नहीं है (दास, 2003)।

(ख) विशिष्टाद्वैत वेदान्त (रामानुजाचार्य, 11वीं-12वीं शताब्दी): इस सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म (ईश्वर) एक है, किंतु वह चित् (जीव) तथा अचित् (जड़ जगत्) से विशिष्ट है, अर्थात् जीव और जगत् ब्रह्म के शरीर के समान हैं।

(ग) द्वैत वेदान्त (मध्वाचार्य, 13वीं शताब्दी): इस सम्प्रदाय के अनुसार ब्रह्म (विष्णु), जीव तथा जगत्—ये तीनों नित्य तथा परस्पर भिन्न सत्ताएँ हैं।

इन तीनों सम्प्रदायों में ब्रह्म तथा माया की अवधारणाओं पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किए गए हैं, जिनका विस्तृत विवेचन आगे के अनुभागों में किया जाएगा।

4. ब्रह्म का स्वरूप: उपनिषदों तथा वेदान्त-सूत्रों के आलोक में (The Nature of Brahman)

4.1 ब्रह्म शब्द की व्युत्पत्ति

"ब्रह्म" शब्द संस्कृत की "बृह्" धातु से बना है, जिसका अर्थ है—बढ़ना, विस्तृत होना अथवा वृहत् होना। इस प्रकार ब्रह्म का शाब्दिक अर्थ है वह परम तत्त्व, जो सबसे बड़ा, सर्वव्यापी तथा असीम है। तैत्तिरीय उपनिषद में ब्रह्म की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मा" (तैत्तिरीय उपनिषद्, 2.1.1)

अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञान तथा अनन्त स्वरूप है। यह परिभाषा ब्रह्म के तीन आधारभूत लक्षणों को उद्घाटित करती है—सत्यत्व (नित्य अस्तित्व), ज्ञानत्व (चैतन्य-स्वरूप) तथा अनन्तत्व (देश-काल की सीमाओं से परे होना)।

4.2 सच्चिदानन्द स्वरूप

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म को "सत्-चित्-आनन्द" स्वरूप कहा गया है। यद्यपि यह शब्द किसी एक उपनिषद-वाक्य में समग्र रूप से नहीं मिलता, तथापि विभिन्न उपनिषद-वाक्यों के समन्वय से आचार्यों ने इसका प्रतिपादन किया है (शर्मा, 2009)—

- **सत् (Existence):** ब्रह्म का अस्तित्व नित्य, अपरिवर्तनशील तथा त्रिकालाबाधित है।
- **चित् (Consciousness):** ब्रह्म शुद्ध चैतन्य-स्वरूप है, जो ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय—सबका आधार है।
- **आनन्द (Bliss):** ब्रह्म आनन्द-स्वरूप है, जो किसी बाह्य वस्तु पर आश्रित नहीं, अपितु स्वतःसिद्ध है।

तैत्तिरीय उपनिषद के आनन्दवल्ली में ब्रह्म के आनन्द-स्वरूप का विस्तृत वर्णन मिलता है, जहाँ मनुष्य के आनन्द से लेकर ब्रह्मानन्द तक की क्रमिक उन्नति को दर्शाया गया है, और अंततः यह कहा गया है कि ब्रह्मानन्द समस्त आनन्दों में सर्वोच्च तथा अतुलनीय है।

4.3 निर्गुण तथा सगुण ब्रह्म

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म के दो स्वरूपों की चर्चा मिलती है—निर्गुण ब्रह्म (पारमार्थिक, निराकार, गुणातीत) तथा सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर (व्यावहारिक, माया के साथ सम्बद्ध, जगत् का स्रष्टा-पालक-संहारक)। मुण्डक उपनिषद में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

*"अशब्दमस्पर्शमिरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥"* (कठोपनिषद्, 1.3.15)

अर्थात् जो शब्द-रहित, स्पर्श-रहित, रूप-रहित, अव्यय, रस-रहित, नित्य, गन्ध-रहित, आदि-अंत से रहित, महत् तत्त्व से भी परे तथा ध्रुव है—उसे जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से मुक्त हो जाता है। यह ब्रह्म का निर्गुण, निर्विशेष स्वरूप है, जो इन्द्रियातीत तथा वाणी के लिए अगम्य है। तैत्तिरीय उपनिषद में भी इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" (तैत्तिरीय उपनिषद्, 2.4.1)

अर्थात् जहाँ से वाणी मन के सहित लौट आती है, उसे प्राप्त किए बिना ही—अर्थात् ब्रह्म वाणी तथा मन दोनों की पहुँच से परे है।

दूसरी ओर, सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर वह है, जो माया-शक्ति से युक्त होकर जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करता है। श्वेताश्वतर उपनिषद में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।" (श्वेताश्वतर उपनिषद्, 4.10)

अर्थात् माया को प्रकृति जानना चाहिए, और मायावी (माया के स्वामी) को महेश्वर (ईश्वर) जानना चाहिए। यह श्लोक ब्रह्म-माया संबंध की चर्चा का एक महत्वपूर्ण उपनिषदिक आधार है, जिस पर आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

4.4 ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म का लक्षण

ब्रह्मसूत्र में महर्षि बादरायण ने ब्रह्म के दो प्रकार के लक्षण प्रस्तुत किए हैं—तटस्थ लक्षण तथा स्वरूप लक्षण। तटस्थ लक्षण के अनुसार, जैसा पूर्व में उल्लेख किया गया, "जन्माद्यस्य यतः" (1.1.2)—अर्थात् जिससे इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा लय होता है, वही ब्रह्म है। यह लक्षण ब्रह्म को जगत् के कारण के रूप में परिभाषित करता है, न कि उसके आंतरिक स्वरूप के आधार पर। स्वरूप लक्षण के अंतर्गत ब्रह्मसूत्र में आगे कहा गया है—

"आनन्दमयोऽभ्यासात्।" (ब्रह्मसूत्र, 1.1.12)

अर्थात् (तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित) आनन्दमय कोश वस्तुतः परमात्मा ही है, क्योंकि "आनन्द" शब्द का बार-बार प्रयोग (अभ्यास) यही सिद्ध करता है।

4.5 ब्रह्म की एकता एवं अद्वितीयता

छान्दोग्य उपनिषद के षष्ठ अध्याय में उद्दालक आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु को नौ दृष्टान्तों के माध्यम से ब्रह्म की एकता तथा जगत् के साथ उसके अभेद-संबंध को समझाते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध दृष्टान्त है—

"तत्त्वमसि श्वेतकेतो।" (छान्दोग्य उपनिषद्, 6.8.7)

अर्थात् हे श्वेतकेतु! तू वह (ब्रह्म) है। यह वाक्य वेदान्त के "महावाक्यों" में से एक है, जो जीव तथा ब्रह्म के मूल अभेद को उद्घाटित करता है। इसी प्रकार अन्य तीन महावाक्य हैं—

1. "प्रज्ञानं ब्रह्म" (ऐतरेय उपनिषद्)—प्रज्ञान ही ब्रह्म है।
2. "अयमात्मा ब्रह्म" (माण्डूक्य उपनिषद्)—यह आत्मा ही ब्रह्म है।
3. "अहं ब्रह्मास्मि" (बृहदारण्यक उपनिषद्)—मैं ब्रह्म हूँ।

इन चारों महावाक्यों का समन्वित निष्कर्ष यह है कि व्यष्टि आत्मा (जीवात्मा) तथा समष्टि ब्रह्म (परमात्मा) में वस्तुतः कोई भेद नहीं है, और यह भेद केवल अज्ञान अथवा माया के कारण प्रतीत होता है (पाण्डेय, 2014)।

5. माया का स्वरूप: अर्थ, लक्षण एवं स्वरूप-निर्धारण (The Nature of Maya)

5.1 माया शब्द की व्युत्पत्ति एवं वैदिक पृष्ठभूमि

"माया" शब्द संस्कृत की "मा" धातु से बना है, जिसका अर्थ है मापना अथवा निर्माण करना। ऋग्वैदिक साहित्य में माया शब्द का प्रयोग मुख्यतः "अद्भुत शक्ति" अथवा "कौशल" के अर्थ में हुआ है, जैसा कि इन्द्र तथा वरुण जैसे देवताओं की मायाशक्ति के संदर्भ में देखा जाता है। किंतु उपनिषद-काल में यह शब्द दार्शनिक अर्थ धारण करने लगा, विशेषतः जगत् की उत्पत्ति के रहस्यमय तथा अनिर्वचनीय कारण के रूप में (शर्मा, 2009)।

5.2 उपनिषदों में माया

श्वेताश्वतर उपनिषद, जो माया शब्द के दार्शनिक प्रयोग का प्राचीनतम उपनिषदिक स्रोत माना जाता है, इस प्रकार कहता है—

*"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।" (श्वेताश्वतर उपनिषद्, 4.10)*

इस श्लोक में माया को "प्रकृति" के रूप में तथा ईश्वर को "मायी" (माया के स्वामी अथवा नियंता) के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह संकेत करता है कि माया कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं, अपितु ईश्वर की शक्ति है, जिसके अधीन रहकर वह जगत् की रचना करती है।

5.3 आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में माया

आदि शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य तथा अन्य प्रकरण-ग्रंथों में माया की अवधारणा को अत्यंत सूक्ष्म तथा व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है। शंकराचार्य के अनुसार माया न तो सत् है (क्योंकि वह ब्रह्म-ज्ञान होने पर बाध्य हो जाती है) और न ही असत् है (क्योंकि वह व्यावहारिक जगत् में कार्य करती हुई प्रतीत होती है)। इसी कारण माया को "सदसद्विलक्षण" अर्थात् सत् और असत् दोनों से विलक्षण (भिन्न) कहा गया है, तथा उसे "अनिर्वचनीय" कहा गया है (दास, 2003)।

5.3.1 अध्यास का सिद्धांत

शंकराचार्य अपने ब्रह्मसूत्रभाष्य की भूमिका (अध्यासभाष्य) में माया की क्रियाशीलता को "अध्यास" के रूप में स्पष्ट करते हैं। अध्यास का अर्थ है—एक वस्तु का धर्म दूसरी वस्तु में आरोपित हो जाना, अर्थात् मिथ्या ज्ञान के कारण एक वस्तु का दूसरी वस्तु के रूप में प्रतीत होना। शंकराचार्य इसे इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

"स्मृतिरूपः परत्र पूर्वदृष्टावभासः।" (शंकराचार्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य, अध्यासभाष्य)

अर्थात् अध्यास वह है, जिसमें पहले देखी गई वस्तु की स्मृति-स्वरूप प्रतीति किसी अन्य वस्तु में हो जाती है। इसका सर्वाधिक प्रचलित उदाहरण है—रस्सी में सर्प का भ्रम (रज्जु-सर्प-न्याय) तथा सीप में चाँदी का भ्रम (शुक्ति-रजत-न्याय)। जिस प्रकार अंधकार में रस्सी को देखकर मनुष्य को उसमें सर्प का भ्रम हो जाता है, यद्यपि रस्सी में वास्तव में कोई सर्प नहीं होता, उसी प्रकार अज्ञानवश ब्रह्म में जगत् की प्रतीति हो जाती है, यद्यपि ब्रह्म में वास्तव में कोई जगत् नहीं है (राधाकृष्णन्, 1948)।

5.3.2 माया के दो प्रमुख कार्य: आवरण एवं विक्षेप

शंकराचार्य के अनुयायी वेदान्तियों ने माया के दो प्रमुख कार्यों (शक्तियों) की चर्चा की है—

1. **आवरण-शक्ति (Concealing power):** यह शक्ति ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को आवृत (ढक) कर देती है, जिससे जीव को ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। यह ठीक उसी प्रकार है, जैसे बादल सूर्य को ढक देते हैं, यद्यपि सूर्य का वास्तविक प्रकाश अप्रभावित रहता है।
2. **विक्षेप-शक्ति (Projecting power):** यह शक्ति ब्रह्म के स्थान पर नाना नाम-रूपात्मक जगत् का प्रक्षेपण करती है, ठीक उसी प्रकार जैसे रस्सी के वास्तविक स्वरूप के आवृत हो जाने पर उसके स्थान पर सर्प का आभास प्रक्षेपित होता है (चतुर्वेदी, 2015)।

5.4 विवर्तवाद: कारण-कार्य संबंध की व्याख्या

अद्वैत वेदान्त में जगत् की उत्पत्ति की व्याख्या "विवर्तवाद" के सिद्धांत के माध्यम से की गई है। इसके अनुसार ब्रह्म जगत् का "विवर्त-कारण" है, न कि "परिणामी-कारण"। परिणामवाद (जिसे सांख्य दर्शन तथा रामानुज के विशिष्टाद्वैत में स्वीकार किया गया है) के अनुसार कारण स्वयं वास्तविक रूप से कार्य में परिवर्तित होता है, जैसे दूध वास्तव में दही में परिवर्तित होता है। किंतु विवर्तवाद के अनुसार कारण (ब्रह्म) अपने वास्तविक स्वरूप में अपरिवर्तित रहते हुए ही कार्य (जगत्) के रूप में प्रतीत होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे रस्सी अपने वास्तविक स्वरूप में अपरिवर्तित रहते हुए ही सर्प के रूप में प्रतीत होती है (शर्मा, 2009)। इस प्रकार जगत् ब्रह्म का "विवर्त" (प्रतीतिमात्र परिणाम) है, वास्तविक परिणाम नहीं।

5.5 माया की त्रिविध सत्ता: सत्ताओं का वर्गीकरण

अद्वैत वेदांती आचार्यों ने सत्ता (अस्तित्व) को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, जिससे माया की स्थिति को समझना सुगम हो जाता है (दास, 2003)—

1. **पारमार्थिक सत्ता (Absolute Reality):** केवल ब्रह्म की सत्ता, जो त्रिकालाबाधित तथा नित्य है।
2. **व्यावहारिक सत्ता (Empirical/Phenomenal Reality):** जगत् तथा जीव की सत्ता, जो व्यवहार-काल में सत्य प्रतीत होती है, किंतु ब्रह्म-ज्ञान होने पर बाधित हो जाती है।
3. **प्रातिभासिक सत्ता (Illusory/Apparent Reality):** स्वप्न तथा भ्रम (जैसे रस्सी में सर्प) की सत्ता, जो अत्यंत अल्पकालिक तथा तत्काल बाधित होने वाली है।

माया व्यावहारिक सत्ता के स्तर पर कार्य करती है—वह न तो पारमार्थिक सत्ता के समान नित्य है, और न ही प्रातिभासिक सत्ता के समान तत्काल बाध्य होने वाली है। यही कारण है कि माया को "अनिर्वचनीय" कहा गया है।

5.6 माया एवं अविद्या: भेद तथा साम्य

वेदान्त दर्शन में "माया" तथा "अविद्या" शब्दों का प्रयोग प्रायः समानार्थी रूप में किया जाता है, तथापि कुछ आचार्यों ने इनमें सूक्ष्म भेद भी किया है। समष्टि (सामूहिक) स्तर पर, जब यह शक्ति ईश्वर के साथ सम्बद्ध होकर जगत् की सृष्टि करती है, तब इसे "माया" कहा जाता है, जो सत्त्वगुण-प्रधान होती है और ईश्वर पर आवरण नहीं डालती, केवल विक्षेप (जगत्-सृष्टि) करती है। किंतु व्यष्टि (व्यक्तिगत) स्तर पर, जब यही शक्ति जीव के साथ सम्बद्ध होकर उसे बाँधे रखती है, तब इसे "अविद्या" कहा जाता है, जो मल-प्रधान (अशुद्ध) होती है और जीव पर आवरण-शक्ति के साथ-साथ विक्षेप-शक्ति का भी प्रयोग करती है (चतुर्वेदी, 2015)। इस प्रकार माया तथा अविद्या मूलतः एक ही शक्ति के दो रूप हैं, जो क्रमशः समष्टि तथा व्यष्टि स्तर पर कार्यरत हैं।

5.7 माया के त्रिगुणात्मक स्वरूप का भगवद्गीता में वर्णन

भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण माया के त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रज, तम) स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥" (भगवद्गीता, 7.14)

अर्थात् त्रिगुणमयी यह मेरी दैवी माया अत्यंत दुस्तर है, किंतु जो केवल मुझ (ईश्वर) की शरण में आते हैं, वे इस माया को पार कर जाते हैं। यह श्लोक स्पष्ट करता है कि माया ईश्वर की ही शक्ति है, तथा ईश्वर-शरणागति द्वारा ही इस माया से मुक्ति संभव है। इससे पूर्व श्लोक में भगवान कहते हैं—

"प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥" (भगवद्गीता, 4.6)

अर्थात् मैं अपनी प्रकृति (माया) को अधिष्ठित करके अपनी आत्ममाया से प्रकट होता हूँ। यह श्लोक ईश्वर के अवतार-रहस्य को माया के संदर्भ में स्पष्ट करता है।

6. ब्रह्म और माया का पारस्परिक संबंध: विभिन्न वेदान्त-सम्प्रदायों की दृष्टि (The Relationship between Brahman and Maya)

6.1 अद्वैत वेदान्त की दृष्टि: ब्रह्म-आश्रित माया

आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त के अनुसार, माया ब्रह्म पर आश्रित है, किंतु ब्रह्म माया से अस्पृष्ट (अप्रभावित) रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे जादूगर अपनी माया (जादू) से नाना रूप प्रदर्शित करता है, किंतु स्वयं उससे अप्रभावित रहता है। शंकराचार्य के अनुसार ब्रह्म पर माया का आश्रय "अध्यास्य-अध्यासक" संबंध के रूप में है, अर्थात् माया एक "उपाधि" (सीमाकारक तत्त्व) के रूप में कार्य करती है, जिसके कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण ईश्वर के रूप में प्रतीत होता है।

शंकराचार्य विवेकचूडामणि में इस संबंध को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

"मायामायातीतं शुद्धं ब्रह्मैव नापरम्॥"

(विवेकचूडामणि के भावानुसार निरूपण, जिसमें ब्रह्म को माया से अतीत, शुद्ध तथा अद्वितीय कहा गया है)

अद्वैत वेदान्त के अनुसार, जब तक जीव को अविद्या (व्यष्टि माया) का आवरण घेरे रहता है, तब तक वह स्वयं को शरीर, मन तथा इन्द्रियों से युक्त एक सीमित व्यक्ति समझता है, किंतु जब यह आवरण ज्ञान द्वारा दूर हो जाता है, तब जीव को अपने वास्तविक ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार होता है। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त में माया एक "मध्यवर्ती" तत्त्व के रूप में कार्य करती है, जो पारमार्थिक दृष्टि से मिथ्या है, किंतु व्यावहारिक दृष्टि से क्रियाशील तथा प्रभावी है (राधाकृष्णन्, 1948)।

6.2 विशिष्टाद्वैत वेदान्त की दृष्टि: माया का खंडन तथा प्रकृति की सत्यता

रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य की माया-अवधारणा का खंडन किया गया है। रामानुज के अनुसार जगत् मिथ्या नहीं, अपितु सत्य है, क्योंकि यह ब्रह्म (ईश्वर) का ही शरीर है। रामानुज के अनुसार ब्रह्म, चित् (जीव) तथा अचित्

(जड़ जगत्)—इन तीनों में वास्तविक भेद है, किंतु ये तीनों एक अविभाज्य (अपृथक्-सिद्ध) संबंध में बंधे हुए हैं, जैसे शरीर तथा आत्मा का संबंध होता है।

रामानुज के अनुसार, जिसे शंकराचार्य "माया" कहकर मिथ्या सिद्ध करते हैं, वह वस्तुतः "प्रकृति" है, जो ईश्वर की एक वास्तविक तथा सत्य शक्ति है, न कि भ्रामक। इस प्रकार रामानुज "अविद्या" शब्द का प्रयोग "अज्ञान" के अर्थ में करते हैं, जो जगत् की मिथ्यात्व को नहीं, अपितु जीव के अज्ञान को इंगित करता है, जिससे जीव अपने वास्तविक स्वरूप (ब्रह्म का अंश तथा शरीरी होने) को नहीं पहचान पाता (दास, 2003)। रामानुज के अनुसार मोक्ष का अर्थ जीव का ब्रह्म में विलय नहीं, अपितु जीव का ब्रह्म के साथ नित्य, आनन्दमय सामीप्य (सामीप्य-मोक्ष अथवा भागवत-सामीप्य) है।

6.3 द्वैत वेदान्त की दृष्टि: पंच-भेद तथा माया का पूर्ण खंडन

मध्वाचार्य के द्वैत वेदान्त में शंकराचार्य की माया-अवधारणा का सर्वाधिक कठोर खंडन प्रस्तुत किया गया है। मध्वाचार्य के अनुसार जगत्, जीव तथा ब्रह्म—तीनों नित्य तथा वास्तविक रूप से भिन्न सत्ताएँ हैं। मध्वाचार्य "पंचभेद" के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं—

1. जीव और ईश्वर में भेद
2. जड़ (प्रकृति) और ईश्वर में भेद
3. जीव-जीव में परस्पर भेद
4. जीव और जड़ में भेद
5. जड़-जड़ में परस्पर भेद

मध्वाचार्य के अनुसार माया कोई भ्रम अथवा मिथ्या शक्ति नहीं, अपितु ईश्वर की एक वास्तविक तथा सत्य शक्ति है, जो जगत् की वास्तविक सृष्टि करती है (चतुर्वेदी, 2015)। इस प्रकार द्वैत वेदान्त में "माया" शब्द का प्रयोग शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत से पूर्णतः भिन्न, वास्तविकतावादी (realist) अर्थ में होता है।

6.4 तीनों सम्प्रदायों का तुलनात्मक विश्लेषण

पक्ष	अद्वैत वेदान्त (शंकर)	विशिष्टाद्वैत (रामानुज)	द्वैत वेदान्त (मध्व)
ब्रह्म का स्वरूप	निर्गुण, निर्विशेष, एकमात्र सत्य	सगुण, विशिष्ट, सविशेष सत्य	सगुण, स्वतंत्र, पूर्ण सत्य (विष्णु)
जगत् की सत्ता	मिथ्या (व्यावहारिक सत्ता मात्र)	सत्य (ब्रह्म का शरीर)	सत्य (स्वतंत्र वास्तविकता)
माया की प्रकृति	अनिर्वचनीय, आवरण-विक्षेपात्मक	वास्तविक शक्ति (प्रकृति)	वास्तविक, ईश्वर की सत्य शक्ति
जीव-ब्रह्म संबंध	पूर्ण अभेद (तत्त्वमसि)	अपृथक्-सिद्ध भेदाभेद (शरीर-शरीरी)	पूर्ण भेद (पंचभेद सिद्धांत)
मोक्ष का स्वरूप	जीव-ब्रह्म ऐक्य का साक्षात्कार	ईश्वर-सामीप्य/सारूप्य	ईश्वर-सान्निध्य में आनन्दानुभूति

यह तुलनात्मक विश्लेषण दर्शाता है कि यद्यपि तीनों सम्प्रदाय प्रस्थानत्रयी पर ही आधारित हैं, तथापि उपनिषद-वाक्यों की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं के कारण ब्रह्म तथा माया के स्वरूप-निर्धारण में गहन मतभेद उत्पन्न हुए (पाण्डेय, 2014)।

7. माया-निवृत्ति एवं मोक्ष: वेदान्त की साधना-पद्धति (Removal of Maya and Liberation)

7.1 अज्ञान-निवृत्ति के उपाय के रूप में ज्ञान

अद्वैत वेदान्त के अनुसार, चूँकि माया अथवा अविद्या मूलतः अज्ञान-स्वरूप है, अतः इसका निवारण केवल ज्ञान द्वारा ही संभव है, कर्म अथवा उपासना द्वारा नहीं। शंकराचार्य के अनुसार, जिस प्रकार अंधकार को दूर करने के लिए प्रकाश ही एकमात्र साधन है, उसी प्रकार अज्ञान को दूर करने के लिए ब्रह्म-ज्ञान ही एकमात्र साधन है। शंकराचार्य विवेकचूडामणि में कहते हैं—

"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशः।"

(यह भाव कैवल्योपनिषद तथा अन्य श्रुतियों से गृहीत है, जिसका अर्थ है—न कर्म से, न संतान से, न धन से, अपितु त्याग द्वारा ही कुछ लोगों ने अमरत्व प्राप्त किया है)

7.2 श्रवण, मनन, निदिध्यासन की त्रिविध साधना-पद्धति

वेदान्त दर्शन में ब्रह्म-साक्षात्कार हेतु तीन क्रमिक साधनाओं का विधान किया गया है, जिनका उल्लेख बृहदारण्यक उपनिषद में मिलता है—

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।" (बृहदारण्यक उपनिषद्, 2.4.5)

अर्थात् हे मैत्रेयी! आत्मा ही देखने योग्य, सुनने योग्य, मनन करने योग्य तथा निदिध्यासन (गहन ध्यान) करने योग्य है।

1. **श्रवण:** गुरु से महावाक्यों (जैसे "तत्त्वमसि") तथा वेदान्त-सिद्धांतों को सुनना।
2. **मनन:** श्रवण किए गए ज्ञान पर तर्कपूर्वक चिंतन करना, जिससे संशय दूर हों।
3. **निदिध्यासन:** ज्ञान को गहन ध्यान द्वारा आत्मसात् करना, जिससे प्रत्यक्ष अनुभूति हो।

7.3 विवेक तथा वैराग्य की भूमिका

अद्वैत वेदान्त की साधना-पद्धति में "नित्यानित्य-वस्तु-विवेक" (नित्य तथा अनित्य वस्तु के मध्य भेद-ज्ञान) तथा "इहामुत्रार्थफलभोगविराग" (इस लोक तथा परलोक के भोगों से वैराग्य) को साधन-चतुष्टय के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। शंकराचार्य के अनुसार जब तक साधक में यह विवेक तथा वैराग्य दृढ़ नहीं होता, तब तक वह माया के आवरण को भेदकर ब्रह्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता (शर्मा, 2009)।

7.4 जीवन्मुक्ति की अवधारणा

अद्वैत वेदान्त में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ब्रह्म-ज्ञान होने पर व्यक्ति को इसी जीवन में मुक्ति प्राप्त हो सकती है, जिसे "जीवन्मुक्ति" कहा जाता है। जीवन्मुक्त पुरुष शरीर के रहते हुए भी माया के बंधन से मुक्त हो जाता है, यद्यपि उसका शरीर प्रारब्ध कर्मों के क्षय होने तक बना रहता है। भगवद्गीता में स्थितप्रज्ञ पुरुष का वर्णन इसी जीवन्मुक्त अवस्था का चित्रण है—

*"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥" (भगवद्गीता, 2.56)*

अर्थात् दुःखों में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुखों में जो स्पृहा-रहित है, तथा जो राग, भय एवं क्रोध से रहित है, वह स्थितप्रज्ञ मुनि कहलाता है। यह श्लोक माया के प्रभाव से मुक्त हो चुके ज्ञानी पुरुष की मानसिक स्थिति का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है।

7.5 विदेह-मुक्ति

जीवन्मुक्ति के पश्चात्, प्रारब्ध कर्मों के क्षय होने पर तथा शरीर के पतन होने पर, जीव को "विदेह-मुक्ति" प्राप्त होती है, जिसमें वह पूर्णतः ब्रह्म में लीन हो जाता है, और उसका पुनः किसी शरीर में जन्म नहीं होता। यह मोक्ष की अंतिम तथा पूर्ण अवस्था है, जिसमें माया का प्रभाव सर्वथा समाप्त हो जाता है।

8. वेदान्त के ब्रह्म-माया विमर्श की समकालीन प्रासंगिकता (Contemporary Relevance of the Brahman-Maya Discourse)

8.1 आधुनिक मनोविज्ञान तथा माया की अवधारणा

आधुनिक मनोविज्ञान में मनुष्य की धारणात्मक भ्रान्तियों (perceptual illusions) तथा संज्ञानात्मक पूर्वाग्रहों (cognitive biases) का अध्ययन किया जाता है, जो वेदान्त की माया-अवधारणा से उल्लेखनीय समानता रखता है। जिस प्रकार वेदान्त के अनुसार जीव अज्ञानवश अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं पहचान पाता, उसी प्रकार आधुनिक मनोविज्ञान भी यह स्वीकार करता है कि मनुष्य का अहंकार-केंद्रित आत्म-बोध (ego-identity) अक्सर उसकी गहनतम वास्तविकता से भिन्न होता है (मिश्र, 2011)।

8.2 आधुनिक भौतिकी तथा जगत् की सापेक्षिक वास्तविकता

आधुनिक क्वांटम भौतिकी में यह अवधारणा प्रचलित है कि प्रत्यक्ष जगत् की वस्तुस्थिति प्रेक्षक (observer) की भूमिका पर निर्भर करती है, तथा यह पदार्थ अपने सूक्ष्मतम स्तर पर स्थिर वस्तु न होकर ऊर्जा तथा संभावनाओं का प्रवाह है। यद्यपि इस समानता को अतिरंजित नहीं करना चाहिए, तथापि यह उल्लेखनीय है कि वेदान्त की माया-अवधारणा—जिसके अनुसार व्यावहारिक जगत् की सत्ता सापेक्ष तथा परिवर्तनशील है, जबकि ब्रह्म की सत्ता निरपेक्ष तथा अपरिवर्तनशील है—ने अनेक आधुनिक विचारकों को आकर्षित किया है (चतुर्वेदी, 2015)।

8.3 तनाव-प्रबंधन तथा मानसिक स्वास्थ्य में वेदांतिक दृष्टिकोण

वर्तमान भौतिकवादी युग में मनुष्य नाम-रूपात्मक जगत् की वस्तुओं—धन, पद, प्रतिष्ठा—में अपनी पहचान तथा सुख खोजता है, जिसे वेदान्त की दृष्टि से "माया के प्रभाव में" रहना कहा जा सकता है। वेदान्त दर्शन यह सिखाता है कि बाह्य वस्तुओं में स्थायी सुख की खोज व्यर्थ है, क्योंकि वे अनित्य तथा परिवर्तनशील हैं। इसके विपरीत, आत्म-साक्षात्कार द्वारा प्राप्त आनन्द ही स्थायी तथा अक्षय है। यह दृष्टिकोण आधुनिक तनाव-प्रबंधन तथा मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में भी उपयोगी सिद्ध हो रहा है, जहाँ माइंडफुलनेस (सजगता) तथा आत्म-अवलोकन जैसी पद्धतियाँ वेदांतिक चिंतन से प्रेरणा लेती हैं (मिश्र, 2011)।

8.4 पारिस्थितिक चेतना तथा एकत्व-भाव

वेदान्त का "तत्त्वमसि" सिद्धांत—अर्थात् समस्त सृष्टि में एक ही ब्रह्म-चैतन्य व्याप्त है—पारिस्थितिक (पर्यावरणीय) नैतिकता के लिए भी एक सशक्त आधार प्रस्तुत करता है। यदि समस्त जीव-जगत् में एक ही चैतन्य व्याप्त है, तो मनुष्य को प्रकृति तथा अन्य जीवों के प्रति भी आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए। यह एकत्व-भाव आज के पारिस्थितिक संकट के युग में विशेष प्रासंगिकता रखता है।

8.5 अंतर-धार्मिक संवाद में वेदांतिक दृष्टिकोण

वेदान्त की माया-अवधारणा—जिसके अनुसार नाम-रूपात्मक भेद व्यावहारिक स्तर पर सत्य होते हुए भी पारमार्थिक स्तर पर एकत्व में विलीन हो जाते हैं—ने अंतर्धार्मिक संवाद (interfaith dialogue) में भी एक समन्वयकारी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। स्वामी विवेकानंद ने शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन (1893) में वेदान्त के इसी सार्वभौमिक तथा समावेशी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए विश्व को यह संदेश दिया कि सभी धर्म एक ही सत्य की भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं (राधाकृष्णन्, 1948)।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत शोध-पत्र में वेदान्त दर्शन में वर्णित ब्रह्म तथा माया की अवधारणाओं का विस्तृत तथा तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म वेदान्त दर्शन का केंद्रीय तत्त्व है, जिसे सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप, नित्य, अनन्त तथा सर्वव्यापी परम सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। माया, जो ब्रह्म की अनिर्वचनीय शक्ति है, इस एकमेव ब्रह्म को नाना नाम-रूपात्मक जगत् के रूप में प्रतीत कराती है, तथा जीव को अपने वास्तविक स्वरूप के अज्ञान में बाँधे रखती है।

आदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदान्त में माया को अनिर्वचनीय, आवरण-विक्षेपात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हुए जगत् को व्यावहारिक दृष्टि से सत्य, किंतु पारमार्थिक दृष्टि से मिथ्या माना गया है। रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत वेदान्त में माया की अवधारणा का खंडन करते हुए जगत् को ब्रह्म के शरीर के रूप में वास्तविक सत्ता प्रदान की गई है। मध्वाचार्य के द्वैत वेदान्त में माया को ईश्वर की एक वास्तविक तथा सत्य शक्ति मानते हुए जीव, जगत् तथा ब्रह्म के मध्य नित्य भेद स्थापित किया गया है।

यद्यपि इन तीनों सम्प्रदायों में गहन दार्शनिक मतभेद विद्यमान हैं, तथापि सभी इस मूल सिद्धांत पर सहमत हैं कि जीव के दुःख का कारण अज्ञान (माया अथवा अविद्या) है, तथा इस अज्ञान की निवृत्ति ही मोक्ष का मार्ग है। श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन की त्रिविध साधना-पद्धति के माध्यम से साधक अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है, और इसी जीवन में जीवन्मुक्ति की अवस्था प्राप्त कर सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि वेदान्त का ब्रह्म-माया विमर्श केवल एक प्राचीन तात्त्विक चिंतन नहीं, अपितु मनुष्य के अस्तित्वगत प्रश्नों—“मैं कौन हूँ?”, “यह जगत् क्या है?”, “जीवन का प्रयोजन क्या है?”—का एक गहन तथा सुव्यवस्थित उत्तर प्रस्तुत करने वाला जीवन-दर्शन है, जो आधुनिक मनोविज्ञान, भौतिकी तथा पारिस्थितिक चिंतन में भी अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर रहा है। भविष्य के शोधकर्ताओं के लिए यह क्षेत्र और भी विस्तार की संभावना रखता है, विशेषतः निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैत, वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत तथा चैतन्य महाप्रभु के अचिन्त्यभेदाभेद जैसे अन्य वेदान्त-सम्प्रदायों में माया की अवधारणा के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से।

10. संदर्भ सूची (References)

- चतुर्वेदी, बद्रीनाथ। (2015)। *वेदान्त-सार: सिद्धांत एवं समीक्षा*। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
- दास, गोविन्दचंद्र। (2003)। *अद्वैत वेदान्त का दार्शनिक विवेचन*। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
- पाण्डेय, राजबली। (2014)। *उपनिषदों का दार्शनिक अध्ययन*। इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- मिश्र, उमेश। (2011)। *भारतीय दर्शन में आत्मा और ब्रह्म की अवधारणा*। इलाहाबाद: उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान।
- राधाकृष्णन्, सर्वपल्ली। (1948)। *भारतीय दर्शन* (हिंदी अनुवाद, भाग 2)। दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स।
- शंकराचार्य। *ब्रह्मसूत्रभाष्य* (हिंदी व्याख्या सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस संस्करण।
- शंकराचार्य। *विवेकचूडामणि* (हिंदी अनुवाद सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस संस्करण।
- शर्मा, चन्द्रधर। (2009)। *भारतीय दर्शन: आलोचना और अनुशीलन*। दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
- व्यास, कृष्णद्वैपायन। (रचनाकाल अज्ञात)। *श्रीमद्भगवद्गीता*। गोरखपुर: गीता प्रेस।
- व्यास, बादरायण। *ब्रह्मसूत्र* (शांकरभाष्य सहित)। वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान।
- *उपनिषद् संग्रह* (ईश, केन, कठ, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, माण्डूक्य, ऐतरेय सहित)। गोरखपुर: गीता प्रेस संस्करण।